Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. IV, Issue No. VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

दतिया रियासत के विभिन्न बुन्देला शासको का अध्ययन

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. IV, Issue No. VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

दतिया रियासत के विभिन्न बुन्देला शासको का अध्ययन

Rajendra Kumar Khare[1]* Dr. Ram Avataar Sharma[2]

[1] Research Scholar, CMJ University, Shillong, Meghalaya

[2] Professor, Department of History, Jiwaji University, Gwalior, Madhya Pradesh

सार – ***दतिया राज्य के संस्थापक महाराज वीरसिंह देव बुन्देला सम्राट अकबर और जहांगीर के समकालीन थे। इसी प्रकार दतिया के प्रथम शासक भगवानदास बुन्देला शाहजहां के और शुभकरन तथा दलपतराव बुन्देला सम्राट औरंगजेब के समकालीन थे। दतिया राज्य के आलोच्य काल के इतिहास का अध्ययन मध्यकालीन भारतीय इतिहास के शोध छात्रों और जिज्ञासु पाठकों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मुगलकाल के दिल्ली से दक्षिण जाने वाले राजमार्ग की सीमाएं दतिया राज्य से लगती थीं। औरंगजेब के समय में उसके राठौरों से युद्ध में उलझ जाने और बुन्देलखण्ड में महाराज छत्रसाल बुन्देला द्वारा स्वतन्त्रता युद्ध के प्रारम्भ कर देने के कारण राजस्थान से तथा छत्रसाल बुन्देला अधिकृत बुन्देलखण्ड के भाग से सम्राट को दक्षिण के युद्धों के लिये सैनिक मिलना बन्द हो गये थे। ऐसी स्थिति में दतिया राज्य से, शासकों से मुगलों के अच्छे सम्बन्ध होने के कारण सैनिकों की पूर्ति होने लगी। दतिया पर निर्भरता होने के कारण औरंगजेब का दतिया के राजा दलपतराव के प्रति कृपा पूर्ण रूख हो गया था। दतिया के शासकों ने औरंगजेब और उसको भाइयों के बीच हुए उत्तराधिकार के युद्ध तथा दक्षिण की अनेक लड़ाइयों में भी निर्णायक भूमिका अदा की थी। इसके साथ दतिया के शासक काल प्रेमी भी थे। बुन्देली स्थापत्य कला तथा दतिया कलम की चित्रशैली के उद्भव और विकास की जानकारी के लिए भी दतिया राज्य के इतिहास का अध्ययन आवष्यक है। बुन्देलखण्ड का दतिया राज्य उसकी पष्चिमी सीमा पर स्थित था।***

मुख्य शब्द:- दतिया राज्य, बुन्देला, शासक

----------X----------

प्रस्तावना

दतिया राज्य पश्चिम में सिन्ध, दक्षिण पश्चिम में महुअर, दक्षिण पूर्व में पहूज एवं उत्तर पूर्व में सिन्ध और पहूज नदियों के मध्य स्थित था। दतिया राज्य के अंग बुन्देला राज्य की स्थापना के पूर्व कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों और चन्देलों के राज्य के अंग थे। सर्वप्रथम बुन्देला राजा रूद्रप्रताप ने अप्रैल 1531 ई. में बुन्देलों की प्रसिद्ध राजधानी ओरछा की नींव डाली। बुन्देलखण्ड के सभी बुन्देला राजपरिवार स्वयं को राजा पंचम का वंशज मानते हैं।

पंचम काशी के राजा कर्णपाल या वीरभद्र के पुत्र थे। रूद्र प्रताप की मृत्यु के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र भारतीचन्द (1531-1554) ओरछा के राजा बने। भारतीचन्द के एक छोटे भाई दुर्गादास ने दतिया से सात मील दूर दक्षिण पश्चिम में दुर्गापुर नामक ग्राम बसाया था। सम्भवतः इसके आसपास के प्रदेश दुर्गादास बुन्देला के अधिकार में थे और दुर्गापुर इनकी प्रधान गद्दी थी। भारतीचन्द की मृत्यु के बाद उनके कोई औरस पुत्र न होने के कारण अनुज मधुकरशाह ओरछा के शासक बने।

अकबर ने वीरसिंहदेव को दबाने के लिये दौलतखां को बड़ौनी भेजा। उसने बड़ौनी पर आक्रमण करके अधिकार तो कर लिया परन्तु उसके मुंह फेरते ही वीरसिंह देव ने पुनः बड़ौनी को जीत लिया। इस स्थिति में अकबर ने ग्वालियर के मुगल फौजदार राजसिंह कछवाहा और ओरछा के शासक रामशाह बुन्देला को वीरसिंह देव पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। रामशाह वीरसिंहदेव के अग्रज भी थे।

वीरसिंह देव ने यद्यपि मुगलों के दबाब के कारण घने जंगलों में शरण लेने और बड़ौनी आकर आसपास के मुगल क्षेत्रों में लूटपाट करने की रणनीति जारी रखी परन्तु बार बार के मुगल आक्रमणों से तंग आकर वीरसिंहदेव ने मित्रों की सलाह मान कर शाहजादा सलीम से मिलने का निर्णय किया शाहजादा सलीम अकबर का विद्रोही ज्येष्ठ पुत्र था वह इस समय इलाहाबाद में रह रहा था। वीरसिंह देव अपने मित्रों के साथ जब शाहजादे के पास इलाहाबाद पहुंचे तो उसने उत्साह से उनका स्वागत किया। सलीम के मन में यह भावना घर कर गई थी कि उसके प्रति

www.ignited.in

सम्राट का कठोर रूख का कारण सेनापति अब्दुलफजल द्वारा सलीम के विरूद्ध शिकायत करना था।

अकबर ने अब्दुलफजल को इस समय दक्षिण के युद्धो से शीघ्र राजधानी वापिस बुलवाया था। अब्दुलफजल के दक्षिण से राजधानी वापस जाने का मार्ग नरवर होकर था और यह स्थान वीरसिंह देव की जागीर बड़ौनी के निकट था। अतः सलीम ने वीरसिंहदेव को पूर्ण आश्रय का आश्वासन देकर अब्दुलफजल के वध के लिये तैयार कर लिया। वीरसिंहदेव को इस कार्य द्वारा बुन्देलखण्ड राज्य की स्थापना की अपनी कल्पना पूरी होती दिखी। वे यह अच्छी तरह समझते थे कि वृद्ध सम्राट अकबर की मृत्यु के बाद उनका एकमात्र जीवित पुत्र शाहजादा सलीम ही शासक बनेगा।

वीरसिंहदेव ने निश्चिन्त होकर 9 अगस्त 1602 ई. को अब्दुलफजल का राजधानी की ओर जाते समय नरवर से बारह मील दूर आंतरी के समीप सराय बरकी नामक स्थान पर आक्रमण कर सर उतार लिया और फिर उसे अपने एक सेवक चम्पतराय के साथ शाहजादे के पास इलाहाबाद भेज दिया। सलीम अब्दुलफजल के सिर को देखकर प्रसन्न हुआ। बाद में अक्टूबर 1605 ई. में अकबर की मृत्यु के बाद सलीम जहांगीर के नाम से सम्राट बना। जहाँगीर के सम्राट बनते ही वीरसिंहदेव के उत्थान का काल प्रारम्भ हो गया। जहांगीर ने वीरसिंहदेव को ओरछा का शासक बना दिया और उनके अग्रज रामशाह को वहां से अपदस्थकर चन्देरी का राज्य दिया। इस प्रकार वीरसिंहदेव अपने बाहुबल और बुद्धि चातुर्य से बड़ौनी की छोटी सी जागीर से बुन्देलखण्ड की राजधानी ओरछा के शासक बने।

वीरसिंह देव को जागीर द्वारा पांच हजार का मनसब प्रदान किया गया था उस समय ओरछा राज्य इक्यासी परगनों में विभाजित था। उसके अन्तर्गत एक लाख पच्चीस हजार गांव थे और वार्षिक आमदनी दो करोड़ रूपये थी। वीरसिंहदेव ने स्थापत्य कला के क्षेत्र में नवीन बुन्देली स्थापत्य की शैली को जन्म दिया। उन्होने दिसम्बर 1618 ई. में एक साथ बावन इमारतों की नींव डलवाई जिनमें से दतिया का सतखण्डा महल, मथुरा का केषोराव का मन्दिर, करेरा एवं झांसी का किला, धामोनी का किला, ओरछा का जहांगीरी महल आदि प्रमुख हैं।

स्थापत्यकला के ये बेजोड़ नमूने आज भी वीरसिंहदेव की कीर्ति को अक्षुण्य बनाये हुये हैं। संसार प्रसिद्ध कला विशेषज्ञ पर्सी ब्राउन और रामकृष्णदास ने वीरसिंहदेव की स्थापत्यकला का विषद विवेचन किया है। वीरसिंहदेव की मृत्यू जून जुलाई 1627 ई. में हो गई। वीरसिंहदेव ने अपने छठवें पुत्र भगवानदास बुन्देला को 20 अक्टूबर 1626 ई. में बड़ौनी दतिया की जागीर प्रदान की। तभी से दतिया राज्य अस्तित्व में आया। दतिया गजेटियर और दतिया के स्थानीय इतिवृत्तों में दतिया के प्रथम शासक भगवानदास बुन्देला को भगवानराव बुन्देला लिखा गया है।

समकालीन कवि केशव ने वीरचरित्र में और अब्दुल हमीद लाहौरी ने पादशाहनामा में भगवानदास बुन्देला ही लिखा है। इसलिये समकालीन स्त्रोत की सूचना को सही माना जाना उचित था। राव शब्द जो स्थानीय इतिवृतों के नाम के साथ जुड़ा है, उससे तात्पर्य राजा से है। तत्कालीन घटनाओं की विवेचन से प्रतीत होता है कि भगवानदास ने आकर बड़ौनी से ही राज्य का संचालन किया। इस समय दतिया भी विद्यमान था परन्तु सैनिक महत्व बड़ौनी का अधिक था। भगवानदास ने पिता वीरसिंहदेव के साथ मार्च 1626 ई. में जहांगीर की ओर से महाबत खां के विद्रोह के दमन में भाग लिया था।

दतिया में दतिया कालम की चित्र शैली का विकास हुआ था। इस समय भित्तिचित्र के उदाहरण सतखण्डा महल में तथा दतिया स्थित छतरियों में देखे जा सकते हैं। व्यक्तिगत चित्रों तथा चित्रमय पुस्तकों का संग्रह दतिया किले में, रायकृष्ण दास के संग्रह में लखनऊ के संग्रहालय में और दतिया के कुछ साहित्यकारों सामंतों आदि के यहाँ देखे जा सकते हैं।

सेंवढ़ा इन्दरगढ़ एवं बड़ौनी के शासक:-

रामशाह को ओडछे चंदेरी स्थानान्तरित कर दिसा। इस प्रकार चंदेरी के रामशाह के वंशजो और ओडछा के वीरंसिहदेव के वंशजो के बीच अप्रवासी वर की नींव पडी। वीर सिंह आजीवन सम्राट के कृपापात्र बने रहे। जहांगीर की अनुकम्पा और उसकी देखी अनदेखी से वीर सिंह का दबदबा बहुत बढ गया और ओडछे के बुंदेलों राज्य की सीमाओं का भी काफी विस्तार हुआ। वीर सिहं देव की मृत्यु जहांगीर की मृत्यु (28 अक्टूबर 1627ई) के तीन-चार महीने पूर्व हो गई। वीर सिहं देव ने अपने पिता राजा मधुकरशाह की तरह अपने जीवनकाल में ही अपने पुत्रों का उत्तराधिकार निश्चित कर दिया था। उनके तीन रानियों से बारह पुत्र थे। ज्येष्ठ रानी अमृतकुवंर से जुझार सिहं, पहाडसिंह, नरहरदिास, तुलसीदास ओर वेणीदास, मंझली रानी गुमानकुंवर से दीवान हरदौल, भगवान राव, चन्द्रभान, किशन सिंह और एक कन्या कुंजकुंवर, छोटी रानी पंचमकुंवर से वाघराज माधोसिंह, जुझारसिंह के बाद 1642 ई. में ओडछा का कारण 'युवराज' बनाया गया। शेष पुत्रों को जो जागीरें दी गईं, वे इस प्रकार थी नरहरिदास को धामौनी, तुलसीदास को गडूका, वेणीदास को पहाडी, हरदौल को बडागांव, भगवानराव को दतिया, चंद्रभन को खरगापुर। परमानन्द ओडछे में ही रहे।

सनकुआ का ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्व:-

मनुष्य प्राचीन समय से ही सजीव व निर्जीव जगत पर प्रभाव डालने का प्रयास कर रहा है। मनुष्य का आत्मकेन्द्रीय स्वभाव, प्रकृति के विनाश का प्रमुख कारण है। वह स्वयं को प्रकृति का शासक मानता है। मनुष्य की गतिविधियों ने प्रकृति को एक भोगौलिक स्वरूप दिया जिस कारण उसका जीवन एक सुव्यवस्थित बन सके।

प्रत्येक संस्कृति, धर्म एवं दर्शन देश व जाति का अपना एक इतिहास होता है। इतिहास तथ्यों का संकलन मात्र नहीं है, अपितु परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में उत्थान, पतन, विकास और अवनति जय और पराजय की पृष्ठभूमि और तथ्य संगलन ही इतिहास कहलाता है। जैन धर्म, नैतिक आचार, दर्शन और संस्कृति समाज व राष्ट्र को निर्देशित करती है।

व्यक्तियों का धर्म इतिहास का एक मात्र प्रयोजन वर्तमान व भावी पीढ़ी को प्रेरणा देता है। जिससे वह भी उन आचारों एवं आदर्शों को मुनष्य के निजी जीवन में शांति व संतोष का अनुभव होता है। उसके व्यवहार से जिन व्यक्तियों का संपर्क होता है उन्हें शांति व संतोष की अनुभूति होए बिना नहीं रहती।

डॉ. सिन्हा हरेन्द्र प्रसाद के अनुसार धर्म का अर्थ हिन्दू, ईस्लाम, बौद्ध, जैन, ईसाई आदि ऐतिहासिक धर्मों से समझा जाना है परन्तु धर्म दर्शन इन धर्मों से भिन्न है जितने भी ऐतिहासिक धर्म हैं इसमें कुछ न कुछ आधार होते हैं उनकी मान्यताऐं होती हैं। धर्म-दर्शन ऐतिहासिक धर्मों के व्यवहारों तथा आधारों का मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। धर्म की उत्पत्ति कब और कैसे हुई उसके स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होते। जंगलों में रहने वाला आदिमानव भी धर्म में विश्वास रखता था। शैलाश्रयों में आदिमानव द्वारा बनाए गए चित्रों में कुछ चित्र पूजा-अर्चना के भी प्राप्त हुए हैं जो यह प्रमाणित करते हैं।

आदिमानव ने ही धर्म की स्थापना की और वह तभी से धर्म में आस्था रखता है तथा भक्ति में भरोसा। ऐतिहासिक मतों के अनुसार शुरू में मनुष्य अन्य पशुओं के समान जंगल में रहता था। उसके पास न तो वस्त्र थे, न ही मकान। वह प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होने वाले कन्द-मूल-फल और पधुओं का शिकार कर अपना पेट भरता था।

धीरे-धीरे मनुष्य की इस दशा में परिवर्तन आना शुरू हुआ। मनुष्य शिकार के लिए केवल पत्थर के औजारों का प्रयोग करने लगा, अपितु उसने पशुओं को पालना भी शुरू किया। उसे यह भी ज्ञात हुआ कि जिन कन्द-मूल-अन्न आदि को वह जंगल में एकत्र करता है, उन्हें वह स्वयं भी खेती द्वारा उत्पन्न कर सकता है।

शीत, वर्षा, और गरमी से बाचव के लिए उसने गुफा में रहना शुरू किया और फिर धीरे-धीरे लकड़ी, फूस व ईंटों के मकान भी बनाने लगा। नग्नता को ढकने के लिए वृक्षों के बल्कल और पशुओं की खाल से अपने तन को ढकना शुरू किया, बाद में ऊन, सन व रूई के विविध प्रकार के कपड़ों का निर्माण करने लगा।

वायु, अग्नि आदि प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग कर उसने अपने जीवन को अधिक सुखी बनाने का प्रयत्न किया। यही से मानव सभ्यता का अंकुरण हुआ। मनुष्य में बुद्धि का विकास होने से जीव-जगत् के विषय में सोचने लगा। इससे "धर्म और संस्कृति" का प्रादुर्भाव हुआ। वह अच्छाई और बुराई के बीच का भेद भी जानने लगा।

उन्नति देने वाली प्राकृतिक शक्तियों और ध्वंस करने वाली शक्तियों की समझ भी उसे होने लगी। आँधी, तूफान, दावानल, भूकम्प से पृथ्वी पर होने वाली हलचलों का सूक्ष्म निरीक्षण भी वह करने लगा। प्रकृति के इन विविध प्रकोपों को देखकर वह सोचने लगा कि वायु, अग्नि, जल आदि ऐसी दैवी शक्तियाँ है।

बड़ौनी में शासकों का राजनैतिक योगदान

दलपतराव का ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र दुःखी था। उसके कारण व पारिवारिक कलहों में फसें, शाही दरबार में उनकी अप्रतिष्ठा हुई और मानसिक क्लेश भी कम नही रहा। सन् 1695-96ई. के बीच दलपतराव और रामचन्द्र के बीच इतना तनाव बढ़ गया कि रामचन्द्र ने उनकी छावनी छोडकर एक अन्य मुगल सेनापति दाऊद खां पन्नी के डेरों में शरण ली। बात सम्राट औरगंजेब तक पहुंचरी। उसने दलपतराव के सुहृय बंधु सरूपसिंह बुंदेला की जमानत पर रामचन्द्रराव को दलपतराव से अलग कर मराठों सरदार संताजी को खदेड़ने भेज दिया। रामचन्द्र मराठों से मुठभेडों में घायल हो गया और फिर वहाँ से भागकर बुंदेलखण्ड चला आया। यहां उसके इरादे पन्ना के छत्रसाल बंुदेला से सहायता लेकर दलपराव की अनुपस्थिति मे दतिया हथिया लेने के थे।

परन्तु छत्रसाल बुंदेला ने केवल शरण देने के अतिरिक्त रामचन्द्र की और कोई सहायता नही की। उन्होंने दलपतराव से व्यर्थ का बैर लेना उचित नही समझा। फिर वे बुन्देलों में आपसी सौहार्द्र और सहयोग के हामी थे, पारस्परिक शत्रुता के नही। इसके कुछ ही पहिले रामचन्द्र की माता का देहान्त हो चुका था।

रामचन्द्र ने इटावा और एरच के फौजदार खैरंगरदेश खां से मिलकर औरंगजेब के पास एक शिकायत पत्र भेजा जिसमें उसने अपने पिता दलपतराव पर यह आरोप लगाया था कि राव का उसकी माता की मृत्यु में हाथ था और उसकी हत्या के साथ ही उनके अदेंशों पर 70 अन्य लोगों को दीवाल पर टंगवा दिया गया है। इस पर नाराज होकर औरंगजेब ने दलपतराव के मनसब में से 500 जात और 500 सचार कम करा दिये और मामले की जांच-पडताल के आदेश दे दिये। तब दलपतराव का सचिव इतिहासकार भीमसेन स्वयं दतिया आया और बडी मुश्किल से किसी तरह मामला रफा-दफा करवाकर दलपतराव का मनसब पूर्ववत करा सका।

दलपतराव और रामचन्द्र के बीच इस कटुता के फलस्वरूप दलपतराव के मरने के बाद दतिया के उत्राधिकार के लिए राव के पुत्रों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई। दलपतराव के तीन रानियां थी, चन्दावली, चांदकुंवर औश्र गुमानकुवर। चंदावली के कोई सन्तान नही हुई। मझली चांदकुंवर से केवल एक पुत्र रामचनद्र था और तीसरी रानी से चार पुत्र भरती सिंह, प्रिथीसिंह, सेनापति और करण जू। मुख्य विरोध रामचन्द्र और भरतीचन्द्र में था। रामचन्द्र की माता भारती चन्द्रे की माता से जेठी थी।

रामचन्द्र वैसे भी सबसे ज्येष्ठ था। इस प्रकार वही दलपतराव के बाद दतिया राज्य का उत्तराधिकरी था। परन्तु दलपतराव उससे नाराज थे और भारतीचन्द्र उनका सबसे अधिक कृपापात्र था। इससे भारतीचन्द्र को दतिया की गद्दी पर दावा करने का उकसावा। मिला। फलःस्वरूप रामचन्द्र और भारतीचन्द के बीच ठन गई। ओडछा के राजा उदोतसिहं और अप्रत्यक्ष रूप से पन्ना के राजा छत्रसान, बुनदेलरा, रामचन्द्र के समर्थक थे। रामचन्द्र के समर्थक थे। रामचन्द्र और भारतीय चन्द्र के आपसी संघर्ष सन् 1711 ई. में भारतीय चन्द्र की मृत्यु हो जाने पर ही बप्द हुए। रामचन्द्र ने अपने शेष तीन भाईयों मे से पृथ्वींसिंह को से हुंडा और सेनापति को खासगी जागीरें दी, जबकि करणजू दतिया में ही रहा। औरंगजेब के उत्तराधिकारी सम्राट बहादुरशाह ने रामचनद्रराव को दतिया के शासक के रूप में मान्यता दे दी।

दतिया एवं बड़ौनी के शासकों का अंग्रेजों के साथ सम्बन्ध

मराठों को भी दोनों आंग्न-मराठा युद्ध में जो 1774-1782 ई. और सन् 1802-1803 के बीच हुए थे, मुहं की खानी पडी। अवध की बेगमें बनारस का राजा चेतसिंह मैसूर के हैदर अली और टीपू सुल्तान सभी अंग्रेजी की बढती शक्ति और दुरश्रि संधियों के शिकार हुए थे। देशी राजे-रजवाडों को पंगु बना देने वाला लार्ड वेलेजली (1798-1805ई.) की सहायक संधियों का दौर शुरू हो चुका था। बुन्देलखण्ड भी बरवस इस राजनैतिक भंवर में खींचता गया। ऐसी स्थिति में शत्रुजीत किसी प्रकार लगभग 40 वर्षो तक अपनी दतिया की गद्दी पर आसीन रहा। यही उसके लिए कम श्रेयस्कर बात नही थी।

सन् 1804 ई. और 1818 ई. की इन दोनों संधियों ने दतिया के बुन्देला राज्य को अंग्रेजी सत्ता के आंचल से बांध दिया। पारीछत के राज्यकाल (1801-1839ई.) में अंग्रेज गर्वनर जनरल लार्ड हेस्टिगं सन् 1824 ई. में कानपुर गये। सन् 1825ई. में लार्ड कौम्बरमियर दतिया आया और सन् 1829 में कैथा के लार्ड विलियम बेंटिक के दरबार में पारीछत उपस्थित हुए। पर इस दतिया के राजा या राज्य की प्रतिष्ठा में जनसामान्य की दृष्टि में कोई वृद्धि नही हुई।

निष्कर्ष

बुंदेला शासक न केवल भारतीय इतिहास के अपितु विश्व इतिहास के महानतम सम्राटों में से एक है। वह एक महान् विजेता, कुशल प्रशासक एवं सफल धार्मिक नेता थे। चाहे जिस दृष्टि से भी उसकी उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाय, वह सर्वथा योग्य सिद्ध होता है। उसमें 'मधुकर शाह जैसी शक्ति, समुद्रगुप्त जैसी बहुमुखी प्रतिभा तथा अकबर जैसी सहिष्णुता थी' उसने अपने पिता से जिस विशाल साम्राज्य को उत्तराधिकार से प्राप्त किया था। वह सर्वथा उसके लिये उपयुक्त था। इससे उसकी सैनिक निपुणता का परिचय मिलता है। उसके शासन काल में बुन्देलखण्ड ने अभूतपूर्व राजनीतिक एकता एवं स्थायित्व का साक्षात्कार किया था। प्रशासन के क्षेत्र में उसने अनेक सुधार किये। वह एक प्रजापालक सम्राट था तथा राजत्व-सम्बन्धी उसकी धारणा पितृपरक थी। उसने कभी भी अपनी दैवी उत्पत्ति का दावा नहीं किया तथा बराबर अपने को जनता का सेवक ही समझता रहा। वह सच्चे हृदय से अपनी प्रजा का न केवल भौतिक अपितु नैतिक कल्याण करने को उत्सुक था। अपने विषाल साम्राज्य में उसने इतनी अधिक योग्यता और निपुणता के साथ प्रशासन का संगठन एवं संचालन किया कि लगभग 37 वर्षों के दीर्घकालीन शासन में पूर्णतया शान्ति एवं सुव्यवस्था बनी रही। राष्ट्रीय एकता की समस्या को उसने अत्यंत कुशलतापूर्वक हल किया तथा सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में एक भाषा, एक लिपि तथा एक ही प्रकार के कानून का प्रचलन करवाया। दण्ड-समता एवं व्यवहार-समता की स्थापना निष्चित रूप से न्याय प्रशासन के क्षेत्र में क्रांतिकारी युग का सूत्रपात करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- उत्तरं समुद्रस्यं हिमाद्रश्वैय दक्षिणं।

वर्षम् तदमातरम् नामं भारतों यत्र संतति।। (विष्णु पुरण 3/1)

2- आसमुद्रात्रु वै पूर्वादा समुद्रास्तु पश्चिमात्।

तयो रेवान्तर गिर्योरऽर्याक्रत विदुबुधाः।। (मनुस्मृति 2/22)

3- हिमवद् विंध्ययों मध्तं यत् प्राग्वन शनादति।

प्रत्येमव प्रभागच्य मध्येदश प्रर्काक्तित्तः।। (मनुस्मृति 2/21)

4- इत जमुना, उत नर्मदा, इत चम्बल, उत टोंस।

छत्रसाल सों सरन कौ, रही न काहू कौ होंस।।

5- दतिया दलपति राव की बसे सिंघ के तीर (दतिया के जिले में प्रचलित कहावत)

6- महाभारत, वनपर्व, 58/2,

7- डॉ. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना 1966, भूमिका पृ.3।

8- दतिया स्टेट गजे., 1907, पृ.2, ई, एच.डी. सेवेल दतियाः पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट लखनऊ पृ.1, सी.यू. एचीसन, ट्रीटीज, इंगेजमेंट्स एण्ड सनदस, भाग 5, गर्वरमेंट आॅफ इण्डिया, कलकत्ता 1931, पृ. 13।

9- डॉ. कामिनी बुन्देलखण्ड की पूर्व रियासतों के पत्र पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण, आराधनाब्रदर्श कानपुर, 1944, पृ.101

10- मोहम्मद उमर खां, भूगोल राज्य दतिया दरबार, दतिया प्रथम वार, 1926 पृ.13, दतिया आर्ट सप्लीमेट, नारायनदास टण्डन, इन्दौर पृ.1

11- डॉ. कामिनी दतिया के स्थान अभिधानों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, आराधना ब्रदर्स कानपुर, 1983, पृ. 19

Corresponding Author

Rajendra Kumar Khare*

Research Scholar, CMJ University, Shillong, Meghalaya

rajendrakhare08@gmail.com